Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

वाल्मीकि रामायण में प्रतिबिम्बित मानव-मूल्यों का सामाजिक अनुशीलन

डॉ बशिष्ठ सिंह कुशवाहा

(प्रवक्ता) +2 उच्च विद्यालय, देवघर, झारखण्ड

शोध आलेख सार- मानुषीय सम्बन्धों में प्रेम, सौहाई, दया, त्याग, भाई-चारा जैसे जीवन मूल्यों के स्थान पर क्रोध, लोभ, मद-मत्सर, मोह का बोलबाला है। ऐसी विषम परिस्थिति में हमें उच्च मानव मूल्यों की ओर ध्यान केन्द्रित करने की परम आवश्यकता है। वाल्मीकि कृत रामायण कालजयी,सर्वकालिक, सार्वजनीन महाकाव्य है इसमें प्रतिपादीत शाश्वत् मूल्य सत्य, अहिंसां, त्याग प्रेम, न्याय, समानता, मानवता, सदाचार, निलोभिता, त्यागशीलता, आदर्शवादिता इत्यादि का महत्व सर्वकालिक है। युग-युगान्तर भी इन जीवनमूल्यों के उच्चादशों को धूमिल नही कर सकता, अतः ये अनुकरणीय है।

मुख्य शब्द- वाल्मीकि, रामायण, समानता, मानवता, सदाचार, निलोभिता, त्यागशीलता

आधुनिक भारतीय संस्कृति पाश्चात्य सभ्यता से आकर्षित होकर दिन-प्रतिदिन भौतिकता की चकाचौध में अपनी नौतिक मान्यताओं से विमुख हो रही है। वास्तव में भूमण्डलीकरण से भारतीय संस्कृति को लाभ भी हुआ है किन्तु इस अत्याधुनिकीरण की कीमत हमें आतंकबाद, भ्रष्टाचार जैसे विध्वंसक परिणामों के रूप चुकानी पड रही है। मानुषीय सम्बन्धों में प्रेम, सौहाई, दया, त्याग, भाई-चारा जैसे जीवन मूल्यों के स्थान पर क्रोध, लोभ, मद-मत्सर, मोह का बोलबाला है। ऐसी विषम परिस्थिति में हमें उच्च मानव मूल्यों की ओर ध्यान केन्द्रित करने की परम आवश्यकता है।

मूल्य शब्द 'मूल्' धातु में 'यत्' प्रत्यय के संयोग से निठपन्न है, जिसका अर्थ है- कीमत या मोल। वस्तुतः मूल्य शब्द का यह अर्थ अत्यन्त अर्थशास्त्रीय है मूल्य शब्द को दर्शनशास्त्र ने सर्वाधिक ऋणी बनाया है। पाश्चात्य दार्शनिक कांट के अनुसार 'शुभ' ही जीवन मूल्य है।[1] महादेवी वर्मा ने मूल्य को परिभाषित करते हुये कहा है कि वास्तव में वे थोडे से सिद्धान्त मे जो मनुष्य को मनुष्य बनाते है, हम उन्ही को जीवन मूल्य कहते है । यहाँ 'सिद्धान्त' शब्द में तात्पर्यजरूर मावबोचित आदर्शात्मक गुणों से रहा होगा। अतः गुण स्वयं में मूल्यवान होने से 'मूल्य' शब्द मं परिणत हो गये है। प्राचीनकाल के भारतीय विचारकों ने मानव जीवन को आध्यात्मिक, भौतिक और नैतिक दृष्टि से उन्नत करने के निमित्त 'पुरूषार्थों की व्यवस्था की थी। पुरूषार्थ मनुष्य का वह आधार है जिसके माध्यम से मनुष्य अपना जीवन जीता है तथा विभिन्नि कर्तव्यों का मनोनिवेशपूर्वक पालन करता है।[3] प्रवृत्ति का सम्यक् और नियत अनुपालन स्वतः मनुष्य को निवृत्ति के निकट ले जाता है। अतः यह प्रवृत्ति-निवृत्ति विवेकज्ञान स्वरूप पुरूषार्थ चतुष्टय ही प्राचीन परम्परा में मानव मूल्यों के रूप में ग्राह्म थे। भारतीय दार्शनिक डॉ0 राधाकृष्णन् का कथन है कि 'वास्तव में मूल्य कुछ न होकर व्यक्ति द्वारा उन मनतव्यों को प्राप्त करने के मापदण्ड या उच्चादर्श है जो जीवन को सत्य की ओर अग्रसर करते है।' समाजशास्त्रीय दृष्टि से जीवन मूल्यों को दो भागों मे बाँटा गया है- पहला वैयक्तिक मूल्य और दूसरा सामाजिक मूल्य। जो मूल्य व्यक्ति की उन्नति में सहायक होते है, वे वैयक्तिक मूल्य है, और जो समाज की प्रगति में सहायक हो, वे सामाजिक मूल्य है। इनमें

सामाजिक मूल्यों का अधिक महत्व है क्योंकि व्यक्ति के अस्तित्व एवं विकास के लिये समाज अनिवार्य तत्व है। पाश्चात्य दार्शनिक स्पेन्सर का मानना है कि व्यक्ति जिन मान्यताओं एवं नैतिक आदर्शों के अनुरूप आचरण करता है, वें उसे नैतिकता का उन्नयन होता है। अतः हम कह सकते है कि मूल्य वस्तु तथा व्यक्ति के उन मानक गुणों पर आधृत सामाजिक आवधारणा है जो मानवीय आवश्यकताओं की तुष्टि के साथ लोकमंगल तथा आत्मोपलब्धि की सिद्धि में सहायक होते है।[4]

महर्षि वाल्मिकि कृत रामायण एक शाश्वत् मूल्यों से परिपूर्ण काव्य है जो जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने में सहायक सिद्ध होता है। आदिकवि ने अपनी अमर-तूलिका से जिन उच्च आदर्शों का चित्रण किया है वे न केवल भारतवर्ष प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व के सामने उच्च नैतिक मानव एवं सामाजिक उदातता की भावना को प्रस्तुत करते है। महर्षि की दृष्टि से समाज सर्वोपरि है । उनके अनुसार मनुष्य का हर एक कदम रमाज को केन्द्र में रखकर ही रखा जाता है। आप कितने ही शुद्ध हृदय से कोई कार्य क्यों न शुरू करें, यदि वह लोक विरूद्ध है तो सर्वथा निन्दनीय ही होगा। सम्भवतः इसी तथ्य को दृढ़तापूर्वक प्रतिस्थापित करने के लिए आदिकवि ने सीता परित्याग का वर्णन चित्रित किया है। मर्यादा पुरूषोत्तम राम लक्ष्मण से कहते है कि 'मेरी अन्तरात्मा य़शस्विनी सीता को शुद्ध समझती है। इसलिये मैं इन विदेहनन्दिनी को साथ लेकर अयोध्या आया था, परन्तु पुरवासी एवं जनपद के लोग मेरी निन्दा कर रहे है। मैं लोकनिन्दा के भय से अपने प्राणों को और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ, फिर सीता को त्यागना कौन सी बडी बात है।[5] वस्तुतः राम का पिता की आज्ञानुसार वन की ओर प्रस्थान भी कोक में आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से ही हुआ था। लक्ष्मण इस रहस्य को उद्घाटित करते हुये कहते है— भैया ! आप समझते है कि यदि पिता की इस आज्ञा का पालन करने के लिये मैं वन को न जाऊँ तो धर्म में विरोध का प्रसङ्ग उपस्थित होगा, इसके सिवा लोगों के मन में यही बड़ी भारी शङ्का उठ खड़ी होगी कि जो पिता की आज्ञा की उल्लंघन करता है, वह यदि राजा ही हो जाय तो हमारा धर्मपूर्वक पालन कैसे करेगा? साथ ही आप यह भी सोचते है कि यदि मैं पिता की आज्ञा का पालन नही करूँ तो दूसरे लोग भी नहीं करेंगे। इस प्रकार धर्म की अवहेलना होने से जगत् के विनाश का भय उपस्थित होगा।[6] वैसे भी व्यक्ति में अनैतिक कर्मों की प्रवृति तभी होती है, जब उसमें समाज का भय नही होता है । महर्षि वाल्मिकि स्वयं कैकयी के धृष्टतापूर्ण व्यवहार का कारण लोकापवाद का भय न होना ही मानते है—

अनर्थरूपासिद्धार्था ह्यभीता भयदर्शिनी।

पुनराकारयामास तमेव वरमङ्गना।।[7]

महर्षि वाल्मिकि ने कौशल्या के रूप में एक आदर्श माता, राजा जनक एवं दशरथ के रूप में आदर्श पिता, राम के रूप में आदर्श भ्राता, पति, पुत्र व राजा, सीता, कौशल्या, अनसूया, मन्दोदरी एवं तारा प्रभृति स्त्रियों के आदर्श पत्नी व पुत्री एवं अयोध्यावासियों के रूप में आदर्श नागरिक इत्यादि संस्थागत उच्चादर्शों का चित्रण किया है वह निश्चित रूप से आधुनिक समाज का मार्ग प्रशस्त करते है। किन्तु यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि इन उच्चादर्शों का मापदण्ड क्या है? किस आधार पर ये आदर्श रूप में ग्राह्य है? इसका उत्तर कदम स्पष्ट है कि महर्षि वालमीकि के इन आदर्शों का आधार सदाचार, सत्य, अंहिसा, अस्तेय, दान, तप, इन्द्रियनिग्रह, प्रेम, न्याय, त्याग, समानता, प्रतिज्ञापालन, परोपकार आदि मूल्य है। श्रीराम के उदात्त चरित्र को परिचय देते हुये कहा गया है कि धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ, शीलवान, अदोषदर्शी, शान्त, दीन-दुःखियों को सान्त्वना प्रदान करने वाले, स्थिरबुद्धि, सदा कल्याणकारी, असूयारहित समस्त प्राणियों के प्रति प्रिय वचन बोलने वाले और सत्यवादी है।[8] उनमें क्रूरता का अभाव, दया, विद्या, शील, दम(इन्द्रिया संयम) और शम (मनोनिग्रह) — ये छः गुण सदा सुशोभित होते है।[9]

महर्षि की दृष्टि में सत्य बोलना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। सत्य ही प्रवण रूप शब्द ब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है।[10] सत्य भाषण में ही वचनबद्धता अनुस्यूत है। क्योकिं अपनी बात से मुकर जाना भी एक प्रकार से असत्य भाषण ही है और वह भी अत्यन्त अनिष्टकारक है। महर्षि वशिष्ठ महाराज दशरथ से कहते है— 'राजन् ! मैं मुक कार्य करूँगा ऐसी प्रतिज्ञा करके भी जो उस वचन का पालन नहीं करता उसके यज्ञ-यागदि इष्ट तथा बावली-तालाब बनवाने आदि पूर्त कर्मों के पुण्य का नाश हो जाता है।[11]

मनसा, वाचा व कर्मणा किसी को क्षति न पहुँचाना ही अहिंसा है। अब शंका हो सकती है कि एक क्षत्रिय अहिंसा का पालन किस प्रकार कर सकता है तो इसका उत्तर भी महर्षि वाल्मिकि ने दिया है कि अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले क्षत्रिय वीरों के लिये धनुष धारण करने का प्रयोजन मात्र इतना ही है कि वे संकट में पडे हुये प्राणियों की रक्षा करें।[12] उनका शस्त्र किसी को कष्ट पहुंचाने के उद्देश्य से नहीं उठता वरन् वे इसलिये शस्त्र धारण करते हैं ताकि किसी को दुःखी होकर हाहाकार न करना पड़े।[13]

सद्व्यवहार में क्षमाशीलता भी श्लाघनीय गुण है। राजा कृषनाभ की कन्याओं के साथ वायु देव द्वारा कुत्सित व्यवहार किये जाने पर राजा कृषनाभ अपनी उन सौ अप्सरा पुत्रियों से वायुदेव को क्षमा करने का आग्रह करते है । और कहते है — स्त्री हो या पुरूष, उसके लिये क्षमा ही आभूषण है। पुत्रियों ! तुम सब लोगों में समानरूप से जैसे क्षमा या सहिष्णुता है, वह विशेषतः देवताओं के लिये भी दुष्कर ही है। पुत्रियों ! क्षमा दान है, क्षमा सत्य है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा यश है और क्षमा धर्म है, क्षमा पर ही सम्पूर्ण जगत् टिका हुआ है।[14]

व्यक्ति व समाज दोनों के उत्कर्ष के लिये इन्द्रियनिग्रह परमावश्यक है। इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् इन्द्रियों पर नियंत्रण। इन्द्रियों को वश में करने पर ही व्यक्ति में त्याग, दान, तप, धैर्य इत्यादि मूल्यों का उन्नयन सम्भव है। जैसे कि श्रीराम के व्यक्तित्त्व से प्रतीत होता है। जब वे वन में जाने को उत्सुक थे और सारी पृथ्वी का राज्य छोड़ रहे थे, फिर भी उनके चित्त में सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त महात्मा की भाँति कोई विकार नहीं देखा गया था।[15] क्योंकि जितेन्द्रिय व्यक्ति के क्रोध, लाभ, मोह, ईर्ष्या इत्यादि मनोभाव नष्ट हो जाते है।[16] इन मनोभावों पर विजय का शस्त्र धैर्य के रूप में सामने आता है। श्रीराम अपने राज्याभिषेक न होने पर क्रुद्ध लक्ष्मण को शान्त करते हुये कहते हैं कि— लक्ष्णण ! केवल धैर्य का आश्रय लेकर अपने मन के क्रोध और शोक को दूर करो, चित्त से अपमान की भावना निकाल दो।[17]

मानव के चारित्रिक विकास के मूल्यांकन का एक और आधार भी है- सेवा धर्म। सेवा से हम सीधे समाज- सेवा समझते है, लेकिन आचार्य बिनोवा भावे की उक्ति मुझे बहुत प्रिय है— 'सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की'। सेवा करनी है तो प्रत्यक्ष व्यक्ति की करो, अप्रत्यक्ष समाज की तो अपने आप हो जायेगी। और यह सेवा समाज की सबसे प्रारम्भिक संस्था परिवार (माता-पिता) से प्रारम्भ होता है। महर्षि वाल्मीकि ने इस तथ्य को कई सौ वर्षों पूर्व ही स्थापित कर दिया था, तभी तो माता कौशल्या वन में जाते हुये पुत्र श्रीराम से कहती है धर्मिष्ठ ! तुम धर्म को जानने वाले हो इसलिये यदि धर्म का पालन करना चाहते हो तो यहीं (राजभवन) में रहकर मेरी सेवा करो। अपने घर में निमयपूर्वक रहकर माता की सेवा करने वाले काश्यप उत्तम तपस्या से युक्त ह स्वर्गलोक में चले गये थे।[18] श्रीराम स्वयं माता-पिता व गुरू की सेवा की महिमा का वर्णन करते हुये कहते है— पिता की सेवा करना कल्याण की प्राप्ति

जैसा प्रबल साधन माना गया है, वैसा न सत्य है, न दान है, न मान है और न पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञ ही है। गुरूजनों की सेवा का अनुसरण करने से स्वर्ग, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख-कुछ भी दुर्लभ नहीं है।[19] इसके अतिरिक्त अतिथ्य सत्कार, शरणागत की रक्षा, मैत्रीभाव, आश्रम व्यवस्था, संस्कार इत्यादि उच्च सामाजिक व्यवस्थाओ का प्रतिपादन कर एक उन्नत समाज की परिकल्पना की गयी है।

वाल्मिकिकृत रामायण का विश्लेषण करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज वर्णाश्रम प्रधान था। वैदिकीय वर्णव्यवस्था का ही अनुकरण करते हुये चार वर्णों में समाज विभक्त थी । जिस प्रकार पुरूष सूक्त में एक विराट् पुरूष से चारों वर्णों का प्रादुर्भाव हुआ है,[20] उसी प्रकार रामायण में कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र जातिवाले मनुष्यों को जन्म दिया—

मुखतो ब्राह्मण जाता उरसः क्षत्रियास्तथा।
ऊरूभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूदा इति श्रुतिः ।।[21]

सम्भवतः समाज के व्यवस्थापकों ने सामाजिक संरचनाओं के सवर्तोन्मुखी विकास को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से वर्णव्यवस्था की नींव गुण व रूचि के अनुसार डाली रही होगी। प्राचीन ऋषि मुनियों ने कर्म विभाजन द्वारा समाज को संगठित व व्यवस्थित करने का प्रयास किया था। रामराज्य का परिचय देते हुए महर्षि नारद कहते है कि ''राम संसार में चारों वर्णों को अपने-अपने धर्मों मे नियुक्त रखेंगे।'' धर्म में नियुक्त रखने का तात्पर्य यहाँ निर्धारित कर्तव्यों एवं निर्वाह से ही रहा होगा।[23] कर्तव्य का निर्धारण रामायण की फलश्रुति से अनुमानित की जा सकती है जहाँ कहा गया है कि इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़ता हो तो पृथ्वी का राज्य प्राप्त करें, वैश्य को व्यापार से लाभ हो और शूद्र भी महत्व को प्राप्त करें।[24] किन्तु चुतवर्णों में भी मूल्यों पर सदैव ध्यान दिया गया है।मनुष्य का मूल्यांकन उसके सद्व्यवहार, दया, दान एवं शीलता पर ही किया गया । तभी तो महाराज दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में महर्षि वशिष्ठ सभी वर्णों को आमंत्रित करते है और सुमन्त्र से कहते है — इस पृथ्वी पर जो-जो धार्मिक राजा, ब्राह्मण, वैश्य और सहस्त्रों शूद्र है, उन सबको इस यज्ञ में आने के लिये निमंत्रित करो।

वस्तुतः वर्ण निर्धारण के आधार स्तम्भ के रूप में गुण, कर्म एवं योग्यता को महत्व दिया गया है. क्षत्रिय राजा विश्वामित्र ने घोर तप कर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया था-

ब्रह्मार्षिस्त्वं न संदेहः सर्व सम्पद्यते तव।
इत्युक्ता देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम्।।[26]

भृगुवंशी ब्राह्मणो के कुल में उत्पन्न परशुराम ने क्षत्रियोचित् कर्मो द्वारा क्षत्रियत्व को प्राप्त किया।[27] इसके अतिरिक्त जीवन मूल्यों के अतिक्रमण करने पर शाप स्वरूप वर्ण परिवर्तन के उल्लेख भी मिलते है, जिनमें राजा त्रिशंकु का चाण्डाल हो जाना,[28] महर्षि वशिष्ठ के सौ पुत्रों को विश्वामित्र द्वारा मुष्टिक नामक चाण्डाल जाति में भेजना तथा महोदय नामक ऋषि को निषाद योनि में जाने का उल्लेख मिलता है।[29] कतिपय स्थानों पर वर्णव्यवस्था अर्जित पद से प्रदत्त पद की ओर प्रस्तुत परिलक्षित होती है। जैसे कि क्षत्रिय राजा दशरथ का पुत्र भी क्षत्रिय, महर्षि वशिष्ठ के पुत्र भी ब्राह्मण, परन्तु तब भी कर्म ही बलशाली प्रतीत होता है क्योंकि सूत पुत्र सुमन्त्र वंशपरम्परा के अनुसार महाराज दशरथ के सूत होने के साथ-साथ अपनी योग्यता के आधार पर 'सचिव' पद पर भी आसीन थे।[30] यद्यपि महर्षि वाल्मिकि ने वर्ण व्यवस्था को गतिशील बनाने का प्रयास किया है लेकिन कहीं-कहीं पर सामाजिक समरसता की कलई खुलती हुई सी प्रतीत होती है। श्रीराम के विषय में यह कहना कि धर्मात्मा श्रीराम चारों वर्णों के सभी मनुष्यों पर उनकी

अवस्था के अनुरूप दया करते थे, वर्ण-भेद की ओर इशारा करता है।[31] इसके अलावा महर्षि वसिष्ठ के पुत्रों का त्रिशंकु के यज्ञ का निमंत्रण यह कहकर ठुकराना कि जो विशेषतः चाण्डाल है और जिसका यज्ञ कराने वाला आचार्य क्षत्रिय है, उसके यज्ञ में देवर्षि अथवा महात्मा ब्राह्मण हविष्य का भोजन कैसे कर सकते है? अथवा चाण्डाल का अन्न खाकर विश्वामित्र से पालित हुये ब्राह्मण स्वर्ग में कैसे जा सकेंगे? तत्कालीन समाज में वर्ण-भेद पर मोहर लगा देता है।[32] इसके अतिरिक्त राक्षस एवं वानरों की भी विभिन्न जातियों का उल्लेख मिलता है, जिनकी योनि का निर्धारण भी उनके गुणों से किया गया है। जैसे कि जन्म से यक्षिणी ताटका अगस्य मुनि के शाप से राक्षसी हो गयी[33] तथा रावण मुनि विश्रवा का पुत्र होकर भी राक्षस कुलाधिपति था, वहीं विभीषण के विषय में शूर्पणखा कहती है कि — मेरे तीसरे भाई विभीषण है, परन्तु वह धर्मात्मा है, राक्षसों के आचार-विचार का कभी पालन नही करता ।— मेरे तीसरे भाई विभीषण है, परन्तु वह धर्मात्मा है, राक्षसों के आचार-विचार का कभी पालन नही करता।[34] अतः वर्णों में चारित्रिक गुणों का महत्व सर्वतः परिलक्षित है, क्योकि चरित्र ही मनुष्य को उच्च या निम्न, छोटा या बड़ा, श्रेष्ठ या तुच्छ बनाता है।

महर्षि वाल्मिकि को सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का अत्यन्त उदात्त स्वरूप आपेक्षित है। आज भी माना जाता है कि समाज को उदात्त, आदर्श और सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिये स्त्री का चरित्र और आचरण उज्ज्वल, सुसंस्कृत एवं निष्कलंक होना चाहिये और अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सामाजिक संस्थाओं ने कुछ मूल्यों को स्थापित किया है। सीता के चरित्र को व्याख्यायित करते हुये नारदजी कहते है— जनक के कुल में उत्पन्न सीता भी, जो अवतीर्ण हुई देवमाया की भाँति सुन्दरी, समस्त शुभलक्षणों से विभूषित, स्त्रियों में उत्तम, राम के प्राणों के समान प्रियतमा पत्नी तथा सदी ही पति का हित चाहने वाली थी, रामचन्द्र जी के पीछे चली जैसे चन्द्रमा के पीछे रोहिणी चलती है।[35] वस्तुतः नारी कभी दासी, कभी सखी, कभी पत्नी, कभी बहन तो कभी माता के रूप समाजिकों का कृतार्थ करती है।[36] क्षमा, विनय, मधुरभाषिता, प्रेम एवं पातिव्रत्य ही उनके आभूषण है। अपहृत सीता के वियोग से व्याकुल राम लक्ष्मण से कहते है— जिसने राज्य से वंचित और हताश हो जाने पर भी मेरा साथ नही छोड़ा, मेरे ही अनुसरण किया, उसके बिना अत्यन्त दीन होकर मैं कैसे जीवन धारण करूँगा। वैदेही द्वारा कभी हंसकर और कभी मुस्कराकर कही हुई वे मधुर, हितकर एवं लाभदायक बाते, जिनकी कहीं तुलना नहीं है, मुझे अब कब सुनने को मिलेगी?[37] रामायणकालीन स्त्रियों के समक्ष सहस्त्रों पातिव्रत स्त्रियों के उदाहरण थे— सीता का कथन है कि जैसे महाभाग शची इन्द्र की सेवा में उपस्थित होती है, जैसे देवी अरून्धती महर्षि वशिष्ठ में, सावित्री सत्यवान् में, श्रीमती कपिल में, मदयन्ती सौदास में, केशिनी सगर में तथा भीमकुमारी दमयन्ती अपने पति निषधनरेश नल में अनुराग रखती है, उसी प्रकार मै भी अपने पतिदेव इक्ष्वाकुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीराम के अनुरक्त हूँ।[38] और ऐसी पवित्र मन की स्त्रियों के साथ पर पुरूष का अनैतिक संसर्ग पाप जन्य है। हनुमान कहते है कि सीता अमित तेजस्वी धर्मात्मा भगवान् श्रीराम की पत्नी है। वे अपने चरित्र के बल से पातिव्रत्य के प्रभाव से सुरक्षित है।[39] तपस्या, सत्यभाषण तथा पति से अनन्य भक्ति के कारण आर्या सीता ही अग्नि को जला सकती है, आग उन्हें नही जला सकती।[40] सुग्रीव कहते है कि सीता जहर मिलाये हुये भोजन की भाँति दूसरों को लिये अग्राह्य है। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भई उन्हें पचा नही सकते। आप शोक त्याग दिजिये। महर्षि वाल्मिकि की स्त्री किसी निष्चेत मूर्ति की भांति किसी एक मनोदशा में स्थिर नही है, वह तो जल की तरह नित नवीन रूप धारण करती है। डॉ० गजानन शर्मा का कथन है कि रामा यणकालीन नारी की स्थिति सर्वत्र एक सी नही है । फिर भी रामायणकालीन नारी का स्वरूप बडा भव्य एवं उदान्त है।[41] कहीं वह अबला है। फिर भी सबला। कभी वह सीता की भाँति 'कल्याणि' है तो कही ताटका प्रभृत 'दुष्टा'। कभी वह त्याग की प्रतिमूर्ति है तो कभी स्वार्थ की पराकाष्ठा। सम्भवतः उद्देश्य यह रहा होगा कि तद्जन्य परिणामों का अवलोकन कर सामाजिक उनसे निवृत्त हो जाये।

इस प्रकार हम देखते है कि वाल्मीकि कृत रामायण कालजयी,सर्वकालिक, सार्वजनीन महाकाव्य है इसमें प्रतिपादीत शाश्वत् मूल्य सत्य, अहिंसां, त्याग प्रेम, न्याय, समानता, मानवता, सदाचार, निलोभिता, त्यागशीलता, आदर्शवादिता इत्यादि का महत्व सर्वकालिक है। युग-युगान्तर भी इन जीवनमूल्यों के उच्चादशों को धूमिल नही कर सकता, अतः ये अनुकरणीय है।

सन्दर्भ - सूची

1. नीतिशास्त्र की भूमिका— डॉo हृदयनारायण मिश्र, पृo 170
2. नवनीत जुलाई 1984, संस्कृति और जीवन मूल्य, पृo 36
3. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास—डॉo जयशंकर मिश्र, पृo 238
4. रामचरितमानस में जीवन मूल्य— डॉo अमिता रानी सिंह, पृo 29
5. वाल्मीकि रामायण— 7/45/10—15
6. वाल्मीकि रामायण— 2/23/5—6
7. लाल्मीकि रामायण— 2/13/2
8. वाल्मीकि रामायण— 2/2/31—32
9. वाल्मीकि रामायण— 2/33/12
10. वाल्मीकि रामायण— 2/14/7
11. वाल्मीकि रामायण— 1/21/6
12. वाल्मीकि रामायण— 3/9/26
13. वाल्मीकि रामायण— 3/10/3
14. वाल्मीकि रामायण— 1/33/7-9
15. वाल्मीकि रामायण— 2/19/33
16. वाल्मीकि रामायण— 2/20/4
17. वाल्मीकि रामायण— 2/22/3
18. वाल्मीकि रामायण— 2/21/23-24
19. वाल्मीकि रामायण— 2/30/35-36
20. ब्राह्मणोडस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैष्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।। ऋग्वेद—10/90/12
21. वाल्मीकि रामायण— 3/14/30
22. वाल्मीकि रामायण— 1/1/96 उतरार्द्ध
23. वाल्मीकि रामायण का समाजशास्त्रीय अध्ययन- शूबनम गुप्ता, पृo 80
24. वाल्मीकि रामायण— 1/1/100
25. वाल्मीकि रामायण— 1/13/20

26. वाल्मीकि रामायण— 1/65/26

27. वाल्मीकि रामायण— 1/75/24-25, 1/76/6

28. वाल्मीकि रामायण— 1/58/10

29. वाल्मीकि रामायण— 1/59-19-21

30. वाल्मीकि रामायण— 2/14/32, 2.15.24

31. वाल्मीकि रामायण— 2/17/15

32. वाल्मीकि रामायण— 1/59/13-15

33. वाल्मीकि रामायण— 1/25/12-13

34. वाल्मीकि रामायण— 3/17/23

35. वाल्मीकि रामायण— 1/1/26/28

36. वाल्मीकि रामायण— 2/12/68

37. वाल्मीकि रामायण— 4/1/108, 110

38. वाल्मीकि रामायण— 5/24/10-13

39. वाल्मीकि रामायण— 5/55/23

40. वाल्मीकि रामायण— 5/55/28

41. वाल्मीकि रामायण— 4/6/7-8

42. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी— डॉ० गजानन शर्मा, पृ० 84